कविता

रमेश कुमार सोनी

राज्यपाल पुरस्कृत व्याख्याता एवं साहित्यकार
निवास- कबीर नगर, फेज-2, रायपुर (छत्तीसगढ़)

कारवाँ

धरती माँ से सुनी
कल एक कहानी
दूध की नदियाँ और
सोने की चिड़िया थी कभी
आँचल रत्नगर्भा और
पानी की अमृतधारा थी यहीं
वृक्षों की ठंडी छाँह और
खट्टे-मीठे फल का स्वाद
परोसती थी वो कभी।

आज मुझे वो मिली है-
जहरीली हवाओं की दम घोंटू साँस और
अम्लीय वर्षा की चिंता लिए
सीना छलनी हुए
बोरवेल से छिद्रित आँचल का दर्द लिए
पानी की घूँट को तरसती
सीने में ज्वाला धधकाती
ओज़ोन की फटी छतरी ओढ़े
विषैले कचरों का बोझा ढोए
मज़बूर है अपनी ही जैव सम्पदाओं को
नष्ट होता देखने को वाकई
धरा:कौन जाने दर्द तेरा।

सबको अपने दर्द की चिंता है
बदलते मौसम से कोफ़्त है
समस्याएँ सबको पता है
समाधान भी जानते हैं
लेकिन ये प्रकृति के शह्शाह जो ठहरे
धरा की आर्तनाद पुकार
वहाँ तक पहुँचे भी तो कैसे।
धरा जानती है इन्हें
किसी माँ की तरह सुधारना
भूकम्प, सुनामी और बाढ़ के
पुराने तरीके छोड़
अब यह गुस्से से कूकर बनी बैठी है
अपने ही कोप भवन में
लोग वैश्विक चर्चा में मशगूल हैं
इसे कैसे मनाया जाय।

इन सबसे दूर मैं
पेड़ लगाते हुए अकेले
बुला रहा हूँ लौटे हुए परिंदों को
दुलार रहा हूँ अपने
इकोसिस्टम की जैव सम्पदाओं को
इस उम्मीद के साथ कि
एक दिन कारवाँ ज़रूर बनेगा
एक दिन ज़रुर ये नादान लोग
शिकायत नहीं रहने देंगे कि-
धरा:कौन जाने दर्द तेरा।

आखिरी पेड़

जंगल कहते ही
याद आने लगते हैं-
पशु- पक्षी, नदी, झरने और
जंगल का कानून
पेड़ मानते हैं कानून
इसलिए सावधान खड़े हैं
जंगल कहे तो ये फूल फल जाते हैं,
झर जाते हैं, कट जाते हैं

उफ़्फ़ भी नहीं करते।

सड़कों की सीमा पर खड़े पेड़
कई दिनों से उनीदें हैं
वे टकराना नहीं चाहते आदमी से
क्योंकि ये विनम्र और अहिंसक हैं
धूल- धुआँ, पत्थर और
मौसम की बेरुखी सहते हुए भी सबको
पानी और छाया निःशुल्क देते हैं;
उदास होने पर
पत्तियाँ गिराकर नंगे खड़े हो जाते हैं और
खुश होने पर महक कर
फल -फूल बाँटने लगते हैं।
पेड़ों की परिंदों से यारी है
पाखी उन्हें अपने गीतों में ढालकर
दुनिया का हाल- चाल सुनाते हैं,
पेड़ चूजों के पलायन से खुश हैं
क्योंकि वे चाहती हैं कि-
बीजों की तरह ही
सबकी बिरादरी
दूर का प्रेम संबंध निभाए।

पेड़ डरे हुए हैं आजकल
कुल्हाड़ी की लकड़ी से
जो पेड़ों की कमज़ोर नस को जानती है
विभीषण की तरह;
एक पेड़ कटने की शोक सभा में
आज जंगल के सभी पेड़ उपवास पर हैं
ठूँठ सिसक रहे हैं,
पक्षी हत्यारे की खोज में निकल पड़े हैं,
डोजियर तैयार हो रहा है;
लोग पौधे लगाते तो हैं
पर बचाते कहाँ हैं ?
आदमी चाहे तो जंगल बचेंगे
क्योंकि अब जंगल का कानून
लोग ही तय करते हैं !!
आदमी के चाहने पर ही बचेगा आखिरी पेड़।

आखिरी उड़ान

उड़ गए हैं चूजे सभी
पँख उगते ही
सूने घोसलें में ताक रही है-
दाना लिए,आज फिर एक माँ।

जाने किधर गए होंगे?
जिंदा भी हैं या कोई निगल गया?
गौरैया हर बार
अपनी उड़ान भर तक खोज कर
उदास लौट आती है
जैसे लौट रहे हैं-
टहल कर वृद्धाश्रम की ओर
कोई खामोश दंपत्ति।

गौरैया हर बार धोखा खाती है
लेकिन हर बार नयी पीढ़ी पर
वह भरोसा जरूर करती है,
गौरैया की नियति बन गई है-
विश्वास करना और प्रतीक्षा करना;
इस बार वह अपने बच्चों को ढूँढने
कॉन्क्रीट के जंगलों तक को छान आई

उसने पाया-
उन घोसलों के हालात भी उसी के जैसे हैं,
एक दिन इन्हीं घोसलों में
कोई अंतिम साँसे लेगा
और दुनिया यूँ ही चलती रहेगी
किसी को कोई फर्क भी नहीं पड़ेगा।

गौरैया के पास
भोजन-पानी खरीदने को पैसे नहीं है!
उधारी उसे कौन देगा?
गिरवी में वह क्या रखेगी?
उसे चोरी-डकैती आती नहीं और
बंदूक उठाने से उसने इंकार किया हुआ है,
इन दिनों भोर और साँझ का कलरव
ढूँढ रहा हूँ मैं

मेरे पौधों के बड़े होने तक
चिड़िया लौट गई थी जाने कहाँ,
काश मैं अपने अतिथियों को
कुछ दिन और रोक पाता
मैं उनके लौटने की प्रतीक्षा में
कुछ और पौधे लगा रहा हूँ....।

अलार्म बज रहा है

इतना पानी दिन भर में पीना है
इतनी साँसे गिनकर लेनी है
इतने समय तक काम करना है
इतने समय व्यायाम करना है
इतने समय में सोना-जागना है
इतना डाटा उपयोग करना है
इतना ही हँसना-बोलना है;

इतने ही पैसों में जिंदा रहना है
इतना ही खाना,खाना है
दवाईयाँ तो तय समय पर लेना ही है
सब कुछ तय होता है-शहरों में।
बहारों को प्रवेश से पहले ही
शहर में प्रवेश के नियम पता हैं

देखो वसंत भी
गमलों में कनबुच्ची करते बैठा है
हवाएँ, अपनी मर्जी से
यहाँ-वहाँ नहीं घूम सकतीं
नदियाँ बेशोर निकल लेती हैं
अतिथियों का प्रवेश निषेध है ही।

जब सब कुछ तय है इनका यहाँ पर
फिर यहाँ के लोग मरने से डरते क्यों हैं?
क्या बचा रह गया है शहर में इनका?
डॉक्टर ने पहले ही चेता दिया है इन्हें कि-
तुम्हारा कोटा पूरा हो चुका है!

नमक, शक्कर, तेल-घी, मसाला सब बंद।
आखिरकार एक दिन
शहर ने सुना ही दिया कि-
इनकी सेवा-सुश्रुषा करो
आब-ओ-हवा बदल दो
दुआएँ करो...

अब ये प्लास्टिक के पहाड़ जैसे लोग
गाँव में अपना घर ढूँढ रहे हैं-
नदी किनारे,जंगल के पास
शहर जैसा घर
अलार्म बज रहा है...
श श श कोई जा रहा है....।

खुशियाँ रोप लें

आज बाग में फिर
कुछ कलियाँ झाँकी
पक्षियों का झुंड
शाम ढले ही लौट आया है
अपने घोंसलों में दाने चुगकर
गाय लौट रही हैं
गोधूलि बेला में
रोज की तरह रंभाते हुए
क्या आपने कभी इनका विराम देखा?

वक्त ना करे कभी ऐसा हो
जैसा हमने देखा है कि-
कुछ लोग नहीं लौटे हैं-
अस्पताल से भी वापस,
हवा-पानी बिक रहा है
नदियों के ठेके हुए हैं;
प्याऊ पर बैनर लगे हैं;
पानी पूछने के रिवाज गुम हुआ है
साँसों की कालाबाज़ारी में-
ऑक्सीजन का मोल महँगा हुआ है।

सब देख रहे हैं कि-
श्मसान धधक रहे हैं
आँसू की धार सूख नहीं पा रही है
घर के घर वीरान हो गए हैं
इन सबके बीच आज भी लोग
कटते हुए पेड़ों पर चुप हैं
प्लास्टिक के फूल बेचकर खुश हैं
खुश हैं बहुत से बचे खुचे हुए लोग
मोबाइल में पक्षियों की रिंगटोन्स से।

आओ आज तो सबक लें
भविष्य के लिए ना सही
अपने लिए ही बचा लें-
थोड़ी हवा,पानी, मिट्टी और जिंदगी
आओ रोप लें खुशी का एक पेड़
एफ.डी. के जैसे!
पुण्य मिलेगा सोचकर!
मुझे विश्वास है कि
तुम्हारी ही हथेली में एक दिन जरूर
खुशियों का बीज अँखु आएगा।